



छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर
दण्डिक अपील क्रमांक 275/2005

1- सुख राम, आयु लगभग 23 वर्ष, पिता राम विरच, व्यवसाय - कृषक, निवासी सरस्वतीपुर, थाना बिश्रामपुर, जिला सरगुजा, छत्तीसगढ़

... अपीलार्थी

विरुद्ध

1- छत्तीसगढ़ राज्य, द्वारा: जिला मजिस्ट्रेट सरगुजा, छत्तीसगढ़

... प्रत्यर्थी

अपीलार्थी की ओर से
राज्य की ओर से

: श्री पी. के. पटेल, अधिवक्ता
: सुश्री नीता तुलसानी, पैनल अधिवक्ता

माननीय न्यायमूर्ति श्री सचिन सिंह राजपूत
बोर्ड पर निर्णय

07/07/2025

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में दं.प्र.सं.) की धारा 374 (2) के अधीन प्रस्तुत इस अपील में , चतुर्थ अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट, सूरजपुर, जिला सरगुजा, छत्तीसगढ़ द्वारा सत्र विचारण क्रमांक 405/2004 में दिनांक 10.03.2005 को पारित आक्षेपित निर्णय को चुनौती दी गई है, जिसमें अभियुक्त/अपीलार्थी को भा.द.सं. की धारा 304 भाग-II के अधीन दोषसिद्ध किया गया था तथा उसे पांच वर्ष के सश्रम कारावास से दण्डित किया गया था।

2. अभियोजन का प्रकरण संक्षिप्त में यह है कि शिकायतकर्ता/बेचनी बाई (अ.सा.-7) अपने पति आलम साय (मृतक) के साथ गाँव सरस्वतीपुर में रहती है। उसका पति एसईसीएल कुम्दा कोलियरी में कर्मचारी है। घटना वाले सप्ताह में उसका पति रात्रि पाली में था और घटना की तिथि, 04.07.2004 को लगभग 11 बजे सुखराम (वर्तमान अपीलार्थी) और गोवर्धन (अ.सा.-6), दोनों भाई आपस में झगड़ रहे थे, जिस पर बेचनी बाई (अ.सा.-7) और आलम साय (मृतक) ने उन्हें झगड़ा न करने के लिए शांत किया। इस पर अपीलार्थी क्रोधित हो गया और उसने आलम साय (मृतक) के सिर पर वार किया, जिससे वह



आँगन में गिरकर बेहोश हो गया। इस घटना के साक्षी देवधारी (अ.सा.-2), बिलासो (अ.सा.-5), कैलासो बाई (अ.सा.-3) और धनमेत (अ.सा.-4) थे। बेचनी बाई (अ.सा.-7) ने मानसाय (अ.सा.-13) और जयकरण (अ.सा.-12) को घटना की सूचना दी। आलम साय (मृतक) को विश्रामपुर अस्पताल में भर्ती कराया गया और उसी दिन दोपहर 14:45 बजे विश्रामपुर थाना में प्रथम सूचना प्रतिवेदन (प्रदर्श डी-1) दर्ज की गई, जिस पर भा.द.सं. की धारा 307 के अधीन अपराध पंजीबद्ध किया गया और उसी दिन शाम 4:30 बजे आलम साय की अस्पताल में मृत्यु हो गई।

3. विवेचना प्रारंभ की गई, शव का पंचनामा तैयार किया गया और शवपरीक्षण भी किया गया, घटनास्थल का नजरी नक्शा तैयार किया गया, साक्षियों की उपस्थिति में बेचनी बाई से मृतक के रक्त के धब्बे, सादी मिट्टी और रक्त के धब्बे वाली सेंडो बनियान जब्त की गई। अपीलार्थी के मेमो के आधार पर, बांस का डण्डा जब्त किया गया, जब्त सामग्री को रासायनिक परीक्षण के लिए एफएसएल भेजा गया, रिपोर्ट प्राप्त हुई, अपीलार्थी को गिरफ्तार किया गया, विवेचना पूर्ण होने के उपरांत भा.द.सं. की धारा 302 के अधीन अपराध क्रमांक 93/2004 के अधीन अभियोग-पत्र मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सूरजपुर, छत्तीसगढ़ के समक्ष प्रस्तुत किया गया, जिन्होंने प्रकरण को सत्र न्यायालय, सूरजपुर को उपार्पित किया और विचारण के लिए विचारण न्यायालय में प्रेषित किया गया। अपीलार्थी पर भा.द.सं. की धारा 302 के अधीन अपराध का आरोप लगाया गया, जिसने अपराध करने से इंकार किया एवं विचारण चाहा।

4. अभियोजन ने 15 साक्षियों का परीक्षण कराया और 19 दस्तावेज प्रस्तुत किए। दं.प्र.सं. की धारा 131 के अधीन अभियुक्त का कथन दर्ज किया गया, जिसमें उसने आरोप से इनकार किया और झूठे आरोप में फँसाए जाने का अभिवाक किया।

5. विद्वान विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों की विवेचना करने के उपरांत, अभियुक्त/अपीलार्थी को उपरोक्तानुसार दोषसिद्ध एवं दण्डित किया। अतः यह अपील प्रस्तुत की गई है।

6. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने तर्क किया कि दोषसिद्धि के संबंध में विद्वान विचारण न्यायालय का निष्कर्ष बेचनी बाई (अ.सा.-7) के एकमात्र कथन पर आधारित है और चूँकि वह एक हितबद्ध साक्षी है, उस पर दोषसिद्धि को यथावत रखने के लिए अवलंब नहीं किया जा सकता। उन्होंने तर्क किया कि अन्य सभी स्वतंत्र साक्षियों, जिन्होंने कथित तौर पर साक्ष्य देखे हैं, ने अभियोजन के प्रकरण का समर्थन नहीं किया है। बेचनी बाई (अ.सा.-7) के कथन में अधिकांश विरोधाभास और लोप हैं, इसलिए उनके कथन को उत्कृष्ट गुणवत्ता का नहीं कहा जा सकता। अपीलार्थी की दोषसिद्धि कानूनन गलत है और उसे अपास्त किया जाना चाहिए। उन्होंने आगे तर्क किया कि यदि अपीलार्थी की दोषसिद्धि को अपास्त नहीं किया जा रहा है, तो उसपर अधिरोपित दण्ड को पहले से ही भुगती गई



अवधि तक कम किया जाए, जो लगभग 249 दिन है। उन्होंने तर्क किया कि अभियुक्त/अपीलार्थी के खिलाफ कोई आपराधिक पृष्ठभूमि नहीं है, उन्होंने जमानत पर रहते हुए स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं किया, और उनकी आगे की अभिरक्षा न केवल उनके लिए बल्कि समाज के लिए भी हानिकार हो सकती है क्योंकि कठोर अपराधियों के बीच होने के कारण उसमें आपराधिक प्रवृत्ति भी विकसित हो सकती है जो समाज के लिए संकट उत्पन्न कर सकती है और इसलिए, उन्हें अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 (संक्षेप में अधिनियम) की धारा 4 का लाभ देकर उन्हें तुरंत रिहा किया जा सकता है। अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने **हुसैनभाई असगरअली लोखंडवाला विरुद्ध गुजरात राज्य (2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 1975)** प्रकरण में उच्चतम न्यायालय के निर्णय, **कर्नाटक राज्य विरुद्ध मुडप्पा (1999) 5 एससीसी 732** प्रकरण में पारित निर्णय और **राधाकृष्णन विरुद्ध पुलिस निरीक्षक दाण्डिक अपील क्रमांक 592/2003 में दिनांक 23.02.2010** को पारित मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया।

7. यद्यपि राज्य/प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, अपीलार्थी के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्क का विरोध किया और तर्क किया कि अभियोजन ने अपना प्रकरण युक्तियुक्त संदेह से परे साबित कर दिया है और इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय के सुविचारित निर्णय में कोई अवैधता या दोष नहीं है। न्यायालय ने उपरोक्त वर्णित अनुसार अभियुक्त/अपीलार्थी को दोषसिद्ध एवं दण्डित किया। इसी प्रकार, अभियुक्त/अपीलार्थी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को देखते हुए, वह अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 (संक्षेप में अधिनियम) या दण्ड में कमी का लाभ पाने का भी हकदार नहीं है।

8. पक्षकारों के अधिवक्तागण को सुना, उनके द्वारा प्रस्तुत परस्पर विरोधी तर्कों पर विचार किया तथा अभिलेख का अत्यंत सावधानीपूर्वक परिशीलन किया।

9. अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य, विशेष रूप से चिकित्सक (अ.सा.-1) के साक्ष्य से, इस न्यायालय को विचारण न्यायालय के इस निष्कर्ष को स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है कि मृत्यु की प्रकृति मानववध है। विचारण न्यायालय का यह निष्कर्ष तदनुसार यथावत रखा जाता है।

10. इस न्यायालय द्वारा अवधारणीय अगला बिंदु यह है कि प्रश्नाधीन अपराध का कर्ता कौन है?

11. अभियोजन की मुख्य साक्षी बेचनी बाई (अ.सा.-7) हैं, जो मृतक की पत्नी हैं। यद्यपि अभियोजन द्वारा अन्य चक्षुदर्शी साक्षी भी प्रस्तुत किए गए थे, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने अभियोजन के प्रकरण का समर्थन नहीं किया है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री पटेल ने तर्क किया कि बेचनी बाई, जो मृतक की पत्नी हैं, एक हितबद्ध साक्षी हैं और अभियोजन को बनाए रखने के लिए उनका अवलंब



नहीं लिया जा सकता। यह तर्क खारिज किए जाने योग्य है। बेचनी बाई (अ.सा.-7), जो मृतक की पत्नी हैं, घटना के समय मौजूद थीं और उन्होंने तत्काल रिपोर्ट (प्रदर्श डी-1) दर्ज कराई है, जिसमें अभियुक्त का नाम और घटना के घटित होने के तरीके का उल्लेख है। केवल इसलिए कि वह पत्नी हैं, उन्हें हितबद्ध साक्षी नहीं कहा जा सकता और नातेदार साक्षी और हितबद्ध साक्षी में अंतर होता है। यह बात समझ से परे है कि जिस व्यक्ति ने अपने पति को खो दिया है, वह एक वास्तविक अपराधी को जाने देगी और एक निर्दोष व्यक्ति को झूठा फंसाएगी। इसी क्रम में, यह न्यायालय माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **बाबन शंकर दफल व अन्य विरुद्ध महाराष्ट्र राज्य** 2025 में प्रकाशित **लाइवलो (एससी) = 2025 आई एन एससी 97** के प्रकरण में पारित निर्णय के कण्डिका 28 व 29 को उद्धृत करना वांछनीय समझता है, जो निम्नानुसार है:-

“28. दाण्डिक प्रकरणों में, साक्षियों की विश्वसनीयता, विशेष रूप से उन साक्षियों की विश्वसनीयता की, जो पीड़ित के करीबी नातेदार हैं, अक्सर जाँच की जाती है। यद्यपि, नातेदार होने का मतलब यह नहीं है कि कोई साक्षी स्वतः ही "हितबद्ध" या पक्षपाती हो जाता है। "हितबद्ध" शब्द उन साक्षियों को संदर्भित करता है जिनका परिणाम में व्यक्तिगत हित होता है, जैसे कि बदला लेने की इच्छा या शत्रुता या व्यक्तिगत लाभ के कारण अभियुक्त को झूठा फंसाना। दूसरी ओर, एक "संबंधी" साक्षी वह होता है जो अपराध स्थल पर स्वाभाविक रूप से मौजूद हो सकता है, और उसकी को केवल पीड़ित से उसके संबंध के कारण खारिज नहीं किया जाना चाहिए। न्यायालय को उनके बयानों की विश्वसनीयता, एकरूपता और सुसंगतता का आकलन करना चाहिए, न कि उन्हें अविश्वसनीय करार देना चाहिए।

29. "हितबद्ध" और "संबंधी" साक्षियों के मध्य अंतर को दलीप सिंह विरुद्ध पंजाब राज्य, एमएएनयु/एससी/0031: 1953:आईएनएससी:46 में स्पष्ट किया गया है, जहाँ इस न्यायालय ने इस बात पर बल दिया था कि एक करीबी नातेदार आमतौर पर किसी निर्दोष व्यक्ति को झूठा फंसाने वाला आखिरी व्यक्ति होता है। इसलिए, संबंधित साक्षी के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय, न्यायालय को उनके परिसाक्ष्य सुसंगति और विश्वसनीयता पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। यह दृष्टिकोण सुनिश्चित करता है कि साक्ष्य को केवल पारिवारिक संबंधों के कारण खारिज नहीं किया जाता है, बल्कि प्रकरण में अन्य साक्ष्यों के साथ उसकी अंतर्निहित





विश्वसनीयता और सुसंगति के आधार पर उसका मूल्यांकन किया जाता है। इस न्यायालय ने इस स्थिति को निम्नलिखित प्रकरणों में दोहराया है:

i. मोहम्मद रोजाली अली व अन्य विरुद्ध असम राज्य गृह मंत्रालय द्वारा सचिव; एमएनयु/एससी/0234/2019:2019:आईएनएससी:22(2019) 19 एससीसी 567

ii. गणपति विरुद्ध तमिलनाडु राज्य; 5 एमएनयु/एससी/0298/2018 : 2018:आईएनएससी:271 : (2018) 5 एससीसी 549

iii. जयबालन विरुद्ध केंद्र शासित प्रदेश पांडिचेरी एमएनयु /एससी/ 1801/2009:2009:आईएनएससी :1223:(2010)1 एससीसी 199”

उपर्युक्त के दृष्टिगत, यह तर्क खारिज किया जाता है।

12. श्री पटेल का दूसरा तर्क यह है कि बेचनी बाई (अ.सा.-7) के कथन में अधिकांशतः विरोधाभास और लोप है, इसलिए उसका अवलंब नहीं लिया जा सकता। निःसंदेह, अ.सा.-7 के कथन में कुछ विरोधाभास और लोप हैं। यद्यपि, विशेष सामग्री पर वह दृढ़ रही, घटना का वर्णन किया और उसने यह भी कहा कि अपीलार्थी ने मृतक के सिर पर केवल एक बार बाँस के डंडे से हमला किया था। हर विरोधाभास और लोप जो प्रकरण की जड़ तक नहीं जाती, अभियोजन के लिए घातक नहीं हो सकती। चक्षुदर्शी साक्षियों के परिसाक्ष्य से, यदि प्रकरण साबित प्रतीत होता है, तो यह न्यायालय ऐसे कथन का अवलंब ले सकता है। इस संदर्भ में, माननीय उच्चतम न्यायालय के उत्तर प्रदेश राज्य विरुद्ध एम. के. एंथनी (1985) 1 एससीसी 505 में प्रकाशित प्रकरण में पारित निर्णय के कण्डिका 10 पर विचार करना आवश्यक है, जो निम्नानुसार है:-

“10. किसी साक्षी के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय, दृष्टिकोण यह होना चाहिए कि क्या साक्षी के साक्ष्य को समग्र रूप से पढ़ने पर सत्य की झलक मिलती है। एक बार यह धारणा बन जाने के बाद, न्यायालय के लिए यह निःसंदेह आवश्यक है कि वह साक्ष्य की और अधिक गहन जाँच करे, विशेष रूप से साक्ष्य में बताई गई विसंगतियों, कमियों और दोषों को विचार में रखते हुए और उनका मूल्यांकन करके यह ज्ञात करे कि क्या यह साक्षी द्वारा दिए गए साक्ष्य के सामान्य स्वरूप के विरुद्ध है और क्या



साक्ष्य का पूर्व मूल्यांकन इस हद तक विकृत है कि वह विश्वास के योग्य न हो। प्रकरण के मूल को न छूने वाले तुच्छ मामलों पर छोटी-मोटी विसंगतियाँ, साक्ष्य से यहाँ-वहाँ संदर्भ से अलग वाक्यों को लेकर अति-तकनीकी दृष्टिकोण, विवेचना अधिकारी द्वारा की गई किसी तकनीकी त्रुटि को महत्व देना, प्रकरण की जड़ तक न जाना, सामान्यतः साक्ष्य को समग्र रूप से अस्वीकार करने की अनुमति नहीं देगा। यदि जिस न्यायालय के समक्ष साक्षी साक्ष्य देता है, उसे यह निर्णय लेने का अवसर मिलता साक्षी द्वारा दिए गए साक्ष्य के सामान्य स्वरूप के बारे में अपनी राय देते हुए, अपीलीय न्यायालय, जिसे यह लाभ नहीं मिला था, को विचारण न्यायालय द्वारा साक्ष्य की विवेचना को उचित महत्व देना होगा और जब तक कोई प्रभावशाली और ठोस कारण न हों, तथ्यों में मामूली भिन्नताओं या दोषों के आधार पर साक्ष्य को अस्वीकार करना उचित नहीं होगा। यहाँ तक कि ईमानदार और सत्यनिष्ठ साक्षी भी मुख्य घटना से असंबंधित कुछ विवरणों में भिन्न हो सकते हैं क्योंकि अवलोकन, धारण और पुनरुत्पादन की क्षमता प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न होती है। प्रतिपरीक्षण एक देहाती और परिष्कृत अधिवक्ता के मध्य एक असमान द्वंद्व है। इस साक्षी, जो परिवार का मित्र और शुभचिंतक है, के साक्ष्य का परीक्षण करने के बाद, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई टिप्पणियों और उच्च न्यायालय द्वारा उसके साक्ष्य को अस्वीकार करने के लिए दिए गए कारणों को ध्यानपूर्वक उचित महत्व देते हुए, विचारण न्यायालय द्वारा इस साक्षी के साक्ष्य के विवेचन को ध्यान में रखते हुए, हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि उच्च न्यायालय ने साक्षी नायर के परिसाक्ष्य को अस्वीकार करने में त्रुटि की थी, जिसका साक्ष्य हमें ठोस और विश्वसनीय प्रतीत होते हैं।”

13. इस निर्णय का माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **राज्य द्वारा प्रतिनिधित्व पुलिस निरीक्षक विरुद्ध सरवनन व एक अन्य(2008) 17 एससीसी 587** में प्रकाशित प्रकरण में और अनुमोदन सहित अनुपालन किया गया था। अतः दूसरा तर्क खारिज किया जाता है।

14. अब, श्री पटेल द्वारा उठाया गया तीसरा तर्क यह है कि अन्य कथित चक्षुदर्शी साक्षियों ने अभियोजन के प्रकरण का समर्थन नहीं किया है, इसलिए चक्षुदर्शी साक्षी (अ.सा.-7) के एकमात्र कथन के आधार पर अपीलार्थी की दोषसिद्धि यथावत नहीं रखा जा सकता। इस न्यायालय के अभिमत में,



यह भी इस आधार पर खारिज किए जाने योग्य है कि दोषसिद्धि को यथावत रखने के लिए साक्ष्य की मात्रा नहीं, बल्कि साक्ष्य मायने रखता है। यदि एक साक्षी सच बोल रहा है और घटना के घटित होने पर प्रकाश डाल रहा है, तो यह दोषसिद्धि हेतु पर्याप्त है। इस संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा हाल ही में **जॉय देवराज विरुद्ध केरल राज्य, 2024 आईएनएससी 473** के प्रकरण में प्रतिपादित विधि पर विचार करने की आवश्यकता है, जो निम्नानुसार है :

“19. वैसे भी, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 134 यह निर्धारित करती है कि किसी भी प्रकरण में, किसी तथ्य को साबित करने के लिए साक्षियों की कोई विशेष संख्या आवश्यक नहीं है। इसलिए, यह कानून नहीं है कि दोषसिद्धि तब तक दर्ज नहीं की जा सकती जब तक कि न्यूनतम दो साक्षियों की मौखिक साक्ष्य एक-दूसरे से मेल न खा रही हो। साक्ष्य की गुणवत्ता मायने रखती है, मात्रा नहीं। यदि किसी एकमात्र साक्षी का साक्ष्य न्यायालय को पूरी तरह विश्वसनीय लगता है, तो वही दोषसिद्धि दर्ज करने का आधार बन सकता है।”

उपरोक्त के आलोक में, यह तर्क भी खारिज किया जाता है।

15. इस न्यायालय के समक्ष अंतिम तर्क यह है कि क्या अपीलार्थी के दण्ड को पहले से भुगती गई अवधि तक कम किया जा सकता है या प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार अधिरोपित पर्याप्त दण्ड क्या होगा। माननीय उच्चतम न्यायालय ने **देव नारायण मंडल विरुद्ध उत्तर प्रदेश राज्य (2004) 7 एससीसी 257** में प्रकाशित प्रकरण के कण्डिका 8 में निम्नानुसार अवधारित किया:

“8. यह हमें उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए दण्ड में कमी के संबंध में अगले प्रश्न पर लाता है। दण्डिक प्रकरणों में दण्डित करना केवल औपचारिकता नहीं है। जहाँ विधि ने न्यायालय को अधिकतम और न्यूनतम सीमा के साथ दण्ड का विकल्प दिया है, वहाँ न्यायालय के पास विवेकाधिकार निहित है। इस विवेकाधिकार का प्रयोग मनमाने ढंग से या मनमौजी ढंग से नहीं किया जा सकता। इसका प्रयोग अपराध की गंभीरता, उसके किए जाने के तरीके, अभियुक्त की आयु और लिंग को विचार में रखते हुए किया जाना चाहिए, दूसरे शब्दों में, दिए जाने वाले दण्ड को प्रत्येक प्रकरण के तथ्य की पृष्ठभूमि में विचार किया जाना चाहिए और ऐसा करते समय न्यायालय को आनुपातिकता के सिद्धांत को विचार में रखना चाहिए। दिया



जाने वाला दण्ड न तो अत्यधिक कठोर होना चाहिए और न ही बेहद कम।”

16. साथ ही, मैं नीचे न्यायमूर्ति वी.आर. कृष्ण अय्यर द्वारा **मोहम्मद गियासुद्दीन विरुद्ध आंध्र प्रदेश राज्य एआईआर 1977 एससी 1926** में प्रकाशित प्रकरण के निर्णय में लिखे गए की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करने के लिए सहमत हूँ, जो निम्नानुसार है:-

पश्चिमी न्यायशास्त्र और समाजशास्त्रियों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से एक समान विचार प्रस्तुत किया है। सर सैमुअल रोमिली ने तत्कालीन ब्रिटेन में क्रूर दंडों की आलोचना करते हुए 1817 में कहा था: "इंग्लैंड के कानून रक्त से लिखे गए हैं"। अल्फिएरी ने सुझाव दिया है: 'समाज अपराध की तैयारी करता है, अपराधी उसे करता है। ग्रीस के एथेंस स्थित अपराध विज्ञान अनुसंधान केंद्र के निदेशक जॉर्ज मिकोडोटिस का मानना है कि 'अपराध सही शिक्षा के अभाव का परिणाम है।' इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अपराध एक रोगात्मक विचलन है, अपराधी को सामान्यतः क्षमा किया जा सकता है, राज्य को बदला लेने के बजाय पुनर्वास करना चाहिए। असामाजिक व्यवहार को जन्म देने वाली उप-संस्कृति का प्रतिकार अनावश्यक क्रूरता से नहीं, बल्कि पुनः संस्कृतिकरण द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, दंडशास्त्र में रुचि का केंद्र व्यक्ति है, और लक्ष्य उसे समाज के लिए बचाना है। इस प्रकार कठोर और बर्बर दंड देना अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। आज मनुष्य दंड को एक ऐसे व्यक्ति को नया रूप देने की प्रक्रिया के रूप में देखता है जो अपराधी बन गया है और आधुनिक समुदाय की प्राथमिक भूमिका अपराधी के पुनर्वास में सामाजिक रक्षा के साधन के रूप में है। इसलिए, हम मानते हैं कि हमारी आपराधिक न्यायालय में 'आतंकवाद' के बजाय एक उपचारात्मक दृष्टिकोण प्रबल होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति की क्रूर कैद केवल उसके मन को क्षति पहुँचाती है। जॉर्ज बर्नार्ड शॉ के शब्दों में: 'यदि आप किसी व्यक्ति को प्रतिशोधात्मक रूप से दंडित करने के लिए, आपको उसे चोट पहुँचानी होगी। यदि आपको उसे सुधारना है, तो आपको उसे सुधारना होगा और चोट पहुँचाने से व्यक्ति नहीं सुधरता। हम अपने आप को न्यायाधीश सर जेफ्री स्ट्रीटफील्ड के इस कथन को उद्धृत करने की स्वतंत्रता दे सकते हैं: 'यदि आपका आपराधिक



न्यायालयों से कोई लेना-देना है, तो आपको स्वयं देखना चाहिए कि बंदी किन परिस्थितियों में अपना दण्ड भुगतते हैं।”

17. दंड की मात्रा निर्धारित करते समय विभिन्न कारकों पर विचार किया जाना आवश्यक है। अपराध की प्रकृति और गंभीरता, अपराध के लिए दिया गया दण्ड, अपराध करने का तरीका, अपराध और दंड के बीच आनुपातिकता, अपराधी का चरित्र, अपराधी की आयु और लिंग, यदि कोई पूर्ववृत्त हो, सुधार की संभावना, समाज पर अपराध का प्रभाव आदि दंड की मात्रा निर्धारित करने में कुछ सुसंगत विचार हैं। न्यायालय को अपराध और दंड के मध्य संतुलन बनाना होगा। उचित दंड अधिरोपित करते समय सुधार की संभावना एक महत्वपूर्ण कारक है। केवल आपराधिक कार्यवाही के लंबे समय तक लंबित रहने के कारण अनुचित सहानुभूति नहीं दी जानी चाहिए।

18. **मुदप्पा** (पूर्वोक्त) प्रकरण में कर्नाटक राज्य द्वारा प्रस्तुत अपील को खारिज करते हुए, माननीय उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की कि “स्वीकृत रूप से, धारा 304 भाग II के अंतर्गत किसी ऐसे अपराध पर अधिनियम लागू करने पर कोई वैधानिक रोक नहीं है जहाँ अधिकतम दण्ड न तो मृत्युदंड है और न ही आजीवन कारावास। इस प्रकरण के इस दृष्टिकोण से और उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय की जाँच करने पर, हम पाते हैं कि न्यायालय ने सुसंगत सामग्री पर विचार किया और फिर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि अभियुक्त को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के प्रावधानों को लागू करके परिवीक्षा पर रिहा किया जाना चाहिए। हमें इस आदेश में कोई दोष नहीं दिखाई देता जिसे इस न्यायालय द्वारा इतने समय के बाद हस्तक्षेप किया जा सके, विशेषतया तब जब इस बारे में कुछ भी नहीं बताया गया है कि क्या अभियुक्त ने किसी भी तरह से परिवीक्षा पर रहने की स्वीकृति देने की शर्तों का उल्लंघन किया है।” उपरोक्त निर्णय का अवलंब लेते हुए, माननीय मद्रास उच्च न्यायालय ने **राधाकृष्णन** (पूर्वोक्त) प्रकरण में अपीलार्थी को अधिनियम की धारा 4 का लाभ प्रदान किया और उसे अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर रिहा कर दिया। **हुसैनभाई असगरअली लोखंडवाला** (पूर्वोक्त) प्रकरण में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग II के अधीन अधिरोपित दण्ड को अपीलार्थी द्वारा पहले ही भुगती गई अवधि तक संशोधित कर दिया है।

19. उपरोक्त निर्णयों के आलोक में, यह अवधारणीय है कि क्या अपीलार्थी पर अधिरोपित दण्ड को कम किया जाना चाहिए और क्या उसे अधिनियम की धारा 4 का लाभ दिया जा सकता है। इस न्यायालय को कई कम करने वाली परिस्थितियाँ मिली हैं, जैसे कि अभियुक्त/अपीलार्थी का पिछला रिकॉर्ड काफी अच्छा है, जैसा कि अपीलार्थी के अधिवक्ता ने व्यक्त किया है कि यह अभियुक्त के विरुद्ध पहला आपराधिक प्रकरण है, यह घटना लगभग 21 वर्ष पूर्व घटित हुई थी, जमानत पर होने के बावजूद अभियुक्त/अपीलार्थी ने कोई अनुचित व्यवहार नहीं दिखाया क्योंकि उसने कभी भी दी गई स्वतंत्रता का



दुरुपयोग नहीं किया है और इतनी लंबी अवधि व्यतीत हो जाने के उपरांत, इस बात की पूरी संभावना है कि वह अपने पारिवारिक जीवन में स्थिर हो गया होगा, और इसलिए, उसे इस विलम्बित चरण में अस्थिर करना उचित और न्यायसंगत नहीं होगा। तदनुसार, चूँकि भा.द.सं. की धारा 304 भाग-II के अधीन अपराध के लिए संहिता में कोई न्यूनतम दण्ड का प्रावधान नहीं है, इस न्यायालय ने उपरोक्त वर्णित परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए, अपीलार्थी को तीन वर्ष के कठोर कारावास से दण्डित करना उचित और न्यायसंगत प्रतीत होता है, जो इस न्यायालय की सुविचारित अभिमतानुसार पर्याप्त होगा। तदनुसार अभिनिर्धारित किया जाता है। इसके अतिरिक्त, यदि प्रकरण के तथ्यों को अधिनियम की धारा 4 में निहित प्रावधानों और उपरोक्त संदर्भित केस लाँ सहित पठन किया जाए, तो अभियुक्त/अपीलार्थी अधिनियम की धारा 4 का लाभ प्राप्त करने का हकदार है।

20. इस प्रकरण के उपरोक्त दृष्टिकोण को विचार में रखते हुए, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। विचारण न्यायालय द्वारा लगाए गए दोषसिद्धि को यथावत रखा जाता है और उस पर अधिरोपित दण्ड को घटाकर तीन वर्ष का सश्रम कारावास किया जाता है। अपीलार्थी को अधिनियम की धारा 4 का लाभ प्राप्त होगा। अपीलार्थी आदेश की तिथि से 90 दिवस के भीतर 25,000/- रुपये की एक जमानत राशि और व्यक्तिगत बंधपत्र के साथ इस आशय का एक जमानती आवेदन प्रस्तुत करेगा कि वह कोई अपराध नहीं करेगा और अच्छा आचरण करेगा तथा एक वर्ष की अवधि के दौरान शांति बनाए रखेगा। यदि किसी भी शर्त का उल्लंघन होता है, तो उसे इस न्यायालय द्वारा अधिरोपित दण्ड को विचारण न्यायालय के समक्ष भुगतना होगा।

21. इस निर्णय सहित विचारण न्यायालय का अभिलेख आवश्यक सूचना एवं अनुपालनार्थ प्रतिप्रेषित किया जाए।

22. फलस्वरूप, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है।

सही/-
(सचिन सिंह राजपूत)
न्यायाधीश



(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण: हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।

